महाकाव्यों की नीतिपरकता ही हमारी सांप्रदायिक समस्याओं का निराकरण है।

- कुछ दिनों पूर्व रामायण और महाभारत को लेकर एक विवाद खड़ा हो गया कि इन्हें नीतिपरक ग्रंथ माना जाए या सैद्धांतिक ग्रंथ। कोई व्यक्ति इन्हें मनुष्य के जीवन से जुड़ी परिस्थितियों का ऐसा नैतिक भंडार माने, जिसे समय के साथ बूझने की जरुरत है या इनमें दिए गए धार्मिक आदेशों की प्रकृति के अनुरूप माने, जिसे बिना किसी संदेह और विवाद के सभी को पालन करना जरूरी है ?इन दोनों ही ग्रंथों के विवाद में आने का कारण इनकी दो कथाएं रही हैं। पहली, एकलव्य की कथा, जिसमें वह अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी बने रहने देने के लिए अपना अंगूठा काटकर गुरू द्रोणाचार्य को दे देता है। दूसरी राम द्वारा शम्बुक के वध की कथा, जिसमें उसके अधर्मी होने के कारण राम उसका सिर धड़ से अलग कर देते हैं। हो सकता है कि कोई महिलावाही, दलित समर्थक, वर्तमान समय का कट्टर राष्ट्रवादी या यूरोपियन माक्र्सवादी इन दोनों कथाओं में संदेहास्पद विषयों को ढूंढ ले। या फिर समाज का एक वर्ग इसमें एक न्याय-संगत समाज में शक्ति और सामाजिक संबंधों के अनुपालन के संदेश को भी ढूंढ सकता है।
- दरअसल, एक नीतिपरक ग्रंथ काँटों से भरी राह के समान है; एक ऐसी राह, जिसकी हर पगडंडी मंजिल पर पहुँचने का प्रलोभन देती है। यहाँ किसी एक पगडंडी को चुनना उलझन भरा होता है, क्योंकि ऐसा करने के लिए आपको अन्य पगडंडियों को त्यागना होता है। इसका निर्णय व्यक्ति को ही करना होता है कि वह किस पगडंडी को चुनकर जीवन में किस प्रकार की हानि या लाभ को चुनता है। मंजिल सबकी एक ही है। नीतिपरक ग्रंथ आपको स्पष्ट संदेश नहीं देता। बल्कि आपको स्वयं ही सब कुछ देख-समझकर जीवन जीने का रास्ता चुनना पड़ता है।जबकि एक सैद्धांतिक ग्रंथ राजमार्ग की तरह होता है, जो साफ-सुथरा और सपाट होता है। जहाँ जगह-जगह पर निकास बिंदु स्पष्ट दिखाई देते हैं। आपको पता होता है कि किस बिंदु से आपको इससे बाहर निकलना है। यहाँ किसी प्रकार की नैतिक समस्याएं नहीं होतीं। आपकी गति, आपकी दिशा, रुकने के स्थान आदि सब कुछ निश्चित होते हैं।

- इस विचारधारा से परे ऐसा लगता है कि नीतिपरक और सैद्धांतिक ग्रंथ वास्तव में वाद-विवाद के विषय होते हैं; एक ऐसा विषय, जिस पर समाज में वाद-विवाद करने और उसके द्वारा अपने समर्थकों का साथ लेना सही माना जा सकता है; जैसे इरावती कर्वे का भीष्म को एक अहंकारी पुरूष के रूप में देखना, जैन रामायण में राम की जगह लक्ष्मण द्वारा रावण का वध करवाया जाना (क्योंकि ऐसा करके ही वे अपने नायक और मर्यादा पुरुषोत्तम से अहिंसा का पालन करवा सकते थे), या फिर ए.के. रामानुजम के द्वारा 300 रामायण का लिखा जाना। यह हमारे नीतिपरक ग्रंथों की विशेषता है, जिसके द्वारा क्षेत्र विशेष के लोग अपनी आकांक्षाओं और आदर्शों को आरोपित कर पाते हैं। हमारा समाज और उसमें रहने वाले लोग इन्हीं महाकाव्यों के माध्यम से नैतिक और राजनैतिक संघर्ष करने में सक्षम हैं। यही कारण है कि आधुनिक भारत के लिए ये महाकाव्य प्रासंगिक सिद्ध होते आए हैं। आज हमें राजनैतिक युद्ध से निपटने के लिए इनकी नई परिभाषाएँ लाने की आवश्यकता है। इन महाकाव्यों को आज समकालीन बनाने की जरुरत है।
- नीतिपरक ग्रंथ तो समाज की आॅर्गेनिक खाद हैं। ये निरंतर प्रवाहमान, कलकल करते बहते ऐसे स्त्रोत हैं, जो सिद्धांतों के जाल में फंसे देशवासियों को उस जाल से मुक्त करने की क्षमता रखते हैं। आज के राजनैतिक चलन से उलट भारतीय परंपरा ने हमेशा ही महाकाव्यों को नीतिपरक ग्रंथ माना है। इन पर लिखे गए टिप्पणी-ग्रंथ या आलोचनात्मक ग्रंथ तो महज अपनी सांस्कृतिक विरासत को खोजते कुछ पथरीले पथ हैं। दुर्भाग्यवश, आज गली-कूचों में पनपते तथाकथित सामाजिक और सांस्कृतिक प्रहरियों ने इन महाकाव्यों को वैचारिक ग्रंथों का रूप दे दिया है। ऐसा वे इसलिए कर पा रहे हैं, क्योंकि उन्हें सत्ता में बैठे लोगों का मौन समर्थन मिल रहा है। यही कारण है कि आज ये प्रहरी भारतीय समाज की इधर-उधर फैली पगडंडियों से हमें निकालकर सीधे राजमार्गों पर खड़ा करने की हिम्मत कर पा रहे हैं। हमारी सांस्कृतिक यात्रा के लिए ये सुगम और सपाट राजमार्ग कहीं से भी उपयुक्त नहीं हैं। हमारे लिए तो वे पगडंडियां ही अनुकूल हैं, जिन्हें हमारे स्थानीय समुदायों ने जटिल ताने-बाने के द्वारा बुना है। वही हमारे सांस्कृतिक जीवन को पोषित करने वाली हैं।
- महुआ की सुगंध का जो महत्व मध्य भारत में है, वही महत्व मछली की गंध का दक्षिण भारत के लोगों के लिए है। हमारे सांस्कृतिक प्रहरियों ने वातावरण से गंध और सुगंध को खत्म करके एक उत्तेजना सी फैला दी है, जिसे सत्तापोषित असामाजिक तत्व और भी अधिक उकसाते रहते हैं। ऐसा करने से पहले क्या वे यह नहीं सोचते कि ऐसे भारत को प्राप्त करने की होड़ में वे एक सभ्यता का नाश कर रहे हैं ? क्या वे एक बार भी ऐसा नहीं सोचते कि यह सब कितना राष्ट्रविरोधी है ?

'द हिंदू' में प्रकाशित पीटर रोनाल्ड डिसूज़ा के लेख पर आधारित।